The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 4 | April 2025
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

कबीरदास के काव्य में भारतीय ज्ञान परम्परा

डॉ.आशीष कुमार तिवारी

सह.प्राध्यापक-हिंदी विभाग, श्री कृष्णा विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र)

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 12-04-2025

Published: 10-05-2025

Keywords:

परंपरायें, ज्ञान, कौशल, उत्कृष्ट, अनुपम मानवीय।

ABSTRACT

भारतीय ज्ञान परम्परा और कबीर के काव्य के बीच एक गहरा संबंध है। कबीर ने अपनी कविताओं में भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों और सिद्धांतों को प्रस्तुत किया है, जैसे कि एकात्मकता, सत्य, प्रेम, और भक्ति। उन्होंने अपनी कविताओं में विभिन्न दार्शनिक और धार्मिक विचारों को जन-साधारण की भाषा में प्रस्तुत किया है, जिससे ज्ञान और ज्ञान की प्राप्ति आम लोगों के लिए आसान हो गई है। भारतीय ज्ञान परंपरा एक विशाल नदी की तरह है जो सदियों से प्रवहमान है। इस ज्ञान परंपरा के भीतर अनेकानेक विशेषताएं हैं। इन विशेषताओं के सम्मिलित रूप हमारे जीवन के अभिन्न अंग या कहें हमारे व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण हिस्से बनकर हमारे सामने उपस्थित रहते हैं। ऐसा भी कह सकते हैं कि जो भारतीय ज्ञान परंपरा है उन्हीं से हमारी संस्कृति निर्मिति हुई है। इसलिए हमें ज्ञान परंपरा को अनिवार्यत रूप से जानना चाहिए और उसके संवर्द्धन के लिए निरंतर प्रयास भी करना चाहिए। ज्ञान की परंपरा जो प्राचीन काल से चली आ रही है,भक्ति काल के कवियों में वह अपने चरम रूप में हमें दिखाई देती है। कबीर दास का भक्ति काव्य भक्ति काल की अनुपम कृति है। भक्ति काव्य मानवीय चेतना की एक उत्कृष्ट साधना है।

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.15407584

भूमिका:-

भारतीय ज्ञान परंपरा एक निर्मल,निश्चल,पवित्र नदी के समान है। जिसमें प्राचीन काल से ही हजारों तपस्वियों की आदर्श मूल्य आस्था ज्ञान संस्कृति और सभ्यताएं,कर्म,भक्ति एवं जीवंत भावनाएं पूर्ण समाहित हैं। यह परंपरा किसी एक तत्त्व को लेकर चलने वाली नहीं, वरन एक व्यापक विराट संचेतना है, जिसने अपने अंतस में भारत के कण-कण में समाहित ज्ञान को स्थान प्रदान किया है। यह ज्ञान परंपरा सहस्रों सूर्यों की रश्मियों के समान अनंत प्रकाश वाली है। जिसमें ज्ञान की समस्त धारायें अपने-अपने स्थान पर तो चमत्कृत होती ही हैं, साथ ही एक दूसरे के साथ संपृक्त होकर द्विगुणित हो उठती हैं। यही प्रकाश बिंदु भारतीय ज्ञान परंपरा है।

शास्त्रों में वसुधैव कुटुम्बकम की चर्चा है। कबीरदास भी अपनी कविता से विश्व मानवतावाद की बात करते हैं। भारत में योग विद्या बहुत पुरानी है। संत कवियों ने हठयोग, कुंडलिनी जाग्रत करने की जो बात की है, वह उन्होंने परंपरा से ग्रहण की है। कबीर जीवन में संयम की बात करते हैं। धन संचय का विरोध करते हैं। यह सब हमारी परंपरा में है जिसे इन्होंने बहुत विस्तार दिया और मनुष्य को जीवन का नया पाठ सिखलाया। कबीर काल का भय दिखाकर करते हैं कि यह सब ठाठ यहीं रह जाएगा। यमदूत जब उठाकर ले जाएगा तब कोई ठाठ

और धन काम नहीं आयेगा। जीवन संयम से सुन्दर बनता है। इन कवियों ने जाति,वर्ण,धर्म का विरोध किया क्योंकि ये भेदमूलक हैं। वे इससे ऊपर उठकर जीवन जीने की शिक्षा देते हैं। उनके अनुसार ज्ञान का तात्पर्य शास्त्र ज्ञान के अहंकार से मुक्त व्यक्ति के सहज ज्ञान से है। इस तरह प्रेम का सहज रूप ही उन्हें मान्य है। कबीर ने धर्म, अध्यात्म और दर्शन के समन्वय का संदेश दिया है।

उद्देश्य:-

प्रस्तुत शोधपत्र के अध्ययन के लक्ष्य एवं उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1.भूमंडलीकरण और उदारीकरण के दौर में कबीर के काव्य की भारतीय ज्ञान परम्परा के रूप में उसकी प्रासंगिकता का अध्ययन करना ।

2. कबीर को समाज के जनसंचारक के रूप में ग्रहण करना।

3.कबीर के ज्ञान,प्रेम और भक्ति भाव को उल्लेखित करना।

शोध पद्धति:-

इस शोधपत्र लिखने के लिए विवेचनात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। इस शोध में द्वितीय स्त्रोतों का उपयोग किया गया है, जिसमें कबीर द्वारा रचित साहित्य और उसकी आलोचना समाहित है।

शोध विस्तार:-

भारत में ज्ञान की दो परंपरा शुरु से रही है। शास्त्र प्रदत्त ज्ञान और यथार्थ अनुभवपरक ज्ञान। यथार्थ अनुभवपरक ज्ञान लोक परंपराओं से जुड़ा है और व्यक्तिपरक अनुभूति की उपज है। तभी तो कबीर कहते हैं कि-"तू कहता कागद लेखी,मैं कहता आंखिन देखी। "1. तो उनका आशय अनुभूतिपरक यथार्थ ज्ञान से है। कबीर जब कहते हैं कि हर घट में राम बसे हैं यानी सभी मनुष्य के हृदय में ईश्वर का बास है तो सभी मनुष्य बराबर हैं। न कोई ऊंचा है,न कोई नीच है। मनुष्य की समता की बात संत कवियों की बड़ी देन है। इस ज्ञान परंपरा के सागर में यदि हिंदी साहित्य के प्रतिबिंब का दिग्दर्शन किया जाए तो वह भी ज्ञानमणियों के समान द्योतित होता हुआ नजर आता है। इसलिए यह परंपरा नित्य नवीन है और नवाचार से युक्त है। परंपरा एक मान्यता के रूप में भी संचालित होती चली जाती हैं। जो जीवन को नवीन आलोक देने वाली होती हैं, नये मूल्यों से जोड़ने वाली होती हैं, नये ज्ञान का प्रतीक होती हैं।

भारतीय ज्ञान परंपराओं में गुरु शिष्य परंपरा का अपना अनूठा ही स्थान है, जो युगों-युगों से भारत को ही नहीं पूरे विश्व को प्रकाशित करती रही है। यदि मूढ़ चिंतन किया जाये तो शिक्षण परंपरा वह परंपरा है जो प्रत्येक क्षेत्र, विषय और पदार्थ के ज्ञान से जोड़कर विश्व के कण-कण को आलोकित कर रही है। गुरु-शिष्य प्रणाली के रूप में ऋषि मुनियों ने खुले आसमान के नीचे घने वृक्षों की छाया में प्राकृतिक वातावरण के मध्य अपने शिष्यों को आध्यात्मिक अनुभूतियों के दर्शन कराये हैं। यही नहीं उन्होंने समस्त विद्याओं का दान कर अपने शिष्यों को ज्ञान का आलोक प्रदान किया है और उनके समस्त संशयों को समाप्त किया है जिसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कबीरदास जी कहते हैं कि,

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपणी जिन गोविन्द दियो बताय।।"2.

भारतीयों की यह ज्ञान परंपरा विश्व में अपने चरण पसार चुकी है। आज वैश्विक संस्कृति भारतीय संस्कृति की सराहना करते हुए, प्रकृति की ओर लौटने की बात करती है। विभिन्न दार्शनिकों ने प्रकृति के मध्य शान्त वातावरण में विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास को महत्वपूर्ण एवं उद्देश्यपूर्ण बताया है। बड़े-बड़े पाश्चात्य शिक्षा दार्शनिक भारतीयों की इस प्रणाली का वैज्ञानिक रूप से समर्थन करते हैं। उनका मानना है

कि प्राकृतिक वातावरण पूर्ण स्वच्छ और स्वस्थ होता है। उसका निर्मल शांत स्वरूप विद्यार्थी को न केवल आत्मिक, मानसिक व बौद्धिक रूप से वरन् शारीरिक रूप से भी स्वस्थ रखता है और स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है। अतः आज विश्व भारत की इस परंपरा का हृदय से स्वागत करता है और कहता है, कि भारतीयों की परंपरायें वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण प्रासंगिक हैं।

भारतीय वैदिक परंपरायें अत्यधिक समुज्ज्वल और प्राकृतिक रही हैं। बालक के मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक विकास के लिए उसमें बाल्यकाल से ही जीवनमूल्यों का बीजारोपण किया जाता था। लेकिन अनेक स्थलों पर परंपरा के साथ-साथ अंधविश्वास का भी आगमन होता चला जाता था, जिसे दूर करने के लिए सदैव ही साहित्य अग्रणी रहा है। महाकवि कबीरदास जी ने अपनी साखियों के माध्यम से समाज को सुधारने और सही दिशा दिखाने की परंपरा का जो प्रवर्तन किया वह परंपरा के रूप में हिंदी साहित्य जगत के मूल में बस गया। अंधविश्वासों का विरोध करते हुए एक स्थल पर वह कहते हैं-

"जस काशी तस मगहर
ऊसर हृदय राम सर होई।"3.

कबीरदास आगे भी जात-पात का विरोध करते हुए कहते हैं-

"जोगी गोरख गोरख करै,
हिंदी राम न उखराई।
मुसलमान कहे इक खुदाई,
कबीरा को स्वामी घट-घट रह्यो समाई।"4.

यहाँ कबीरदास इन पंक्तियों के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि, परब्रह्म परमात्मा एक ही है। कोई उसे राम कहे, कोई गोरख कहे, कोई अल्लाह कहे लेकिन वह एकाकार ब्रह्म ही सबको व्याप्त किये हुए है। अतः मानव संस्कृति को भी कल्याणमयी रुप धारण करके एक-सा रूप धारण करना चाहिए।

आज संपूर्ण विश्व वैदिक परंपराओं में समाई भक्ति परंपरा की आचरण शक्ति को अपना रहा है। इन परंपराओं का वैश्विक धरातल पर गहरा प्रभाव पड़ा है। तपोमई भक्ति से युक्त जीवन शैली ने मानव को तनाव मुक्त वातावरण प्रदान किया है। सात्विक आहार-विहार ने उसे सुख पूर्ण जीवन दिया है। आज स्वास्थ्य सञ्जीवनी बनकर भक्ति प्रणाली पूरे विश्व के द्वारा सराही जा रही है। संपूर्ण संसार बड़े-बड़े ऋषि मुनियों, कवियों, संतों, साहित्यकारों के द्वारा बताई गई भक्ति शैलियों को अपना रहा है। यह भारतीय ज्ञान परंपराओं का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

संत-कवि कबीरदास जी निगुर्ण ब्रह्म में विश्वास करते है। जो सर्वव्यापी है,अजर अमर है,अगोचर है, निराकार है, निर्गुण है, शाश्वत है।

"कबीर पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कौ सोभा नहीं, देखा ही परवान।।"5.

कबीर कहते है कि निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप कैसा है? इसे समझाना और समझाना दोनों ही कठीन है-

"दसरथ सुत तिहुलोक बखाना।
राम नाम का मरम न जाना।।"6.

कबीर के काव्य में निर्गुण ब्रह्म की महत्ता प्रतिपादित की गई है। उनके अनुसार ब्रह्म का निवास स्थान मनुष्य के घट में ही है उसे बाहर खोजने जान व्यर्थ है-

"हरि हिरदै अनत कत चाहौ।
भूले भ्रम दूनी कत वाहौ।।"7.

माया और भ्रमवश व्यक्ति उसे बाहर खोजता है जिस प्रकार कस्तूरी तो मृग की नाभि में वसी होती है परन्तु उसकी सुगन्ध से मतवाला बना मृग उसे खोजने के लिए दूर-दूर जंगलों में भटकता फिरता है। घासों को सूंघ सूंघ कर उदास हो जाता है फिर भी उसे सुगन्ध का पता नहीं चल पाता है। ठीक वैसे ही व्यक्ति ईश्वर को मंदिर, मस्जिद, तीर्थ-व्रत, उपासना एवं विभिन्न प्रकार के विधि-विधानों में खोजता है परन्तु ईश्वर तो मनुष्य के भीतर ही वसे है। उसे वह देख नहीं पाता-

"कस्तूरी कुन्डलि वसै मृग ढूढे वन माहि।
ऐसे घटि घटि राम है, दुनियों देखौं नाहि।।"8.

पुस्तक ज्ञान, तथा अनेक प्रकार के विधि-विधानों के विरोध की प्रवृति नाथ जैन साहित्य की तरह कबीर के काव्यों में भी प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त है।

कबीरदास कहते है -

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेम कै, पढ़े सो पंडित होय ।।"9.

संत काव्यों में गुरू को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है। कबीर की दृष्टि में गुरू 'गोविन्द' से भी बढ़कर है क्योंकि 'हरि रूटै गुरू ठौर है, गुरू रूठे नहीं ठौर' कहकर कबीर ने गुरु को सबसे बड़ा आश्रय स्थान माना है। जो ईश्वर के रूठने पर भी भक्त की रक्षा करता है। तंत्र और योग साधना में गुरू का महत्व अत्यधिक था क्योंकि दोनों धर्म-साधनाएं गूढ़ शारीरिक क्रियाओं को महत्व देती थी, जिनमे गुरु की आवश्यकता पग-पग पर अनुभव की जाती थी। सिद्ध साहित्य से स्पष्ट होता है कि सिद्धों ने गुरू ज्ञान को महत्व देते हुए शास्त्र-ज्ञान को मरूभूमि के समान वताया है जिसमें भटक भटक कर वे जल के अभाव में प्यासे रह जाते थे गुरू उपदेश उनके लिए अमृत था।

कबीर गुरू के महत्व को बताते हुए कहते है -

"गुरू गोविन्द तौ एक है, दूजा सब आकार।
आपा मेटै हरि भजै, तब पावै दीदार।।"10.

सभी संत कवियों ने समाजिक समानता पर बल दिया है। इन्होंने जातिगत और वर्णगत भेदभाव को अस्वीकार किया है। जाति-पाति, ऊच-नीच, व छुआछूत का विरोध किया है। कबीर इससे भी तीखे स्वर में कहते है-

"एक बूंद एकै मल मूतर, एक चॉम एक गुदा।
एक जोति थे सब उतपना, कौन बाह्मन कौन सूदा।।"11.

सामान्यतः संत कवि कबीरदास ने सरल, सहज और स्वाभाविक भाषा का प्रयोग कर अपने विचारों को सामान्य जनता तक पहुँचाया । इसलिए उन्होने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जिसे सामान्य जनता समझ सकें। संत कवि कबीर की भाषा के संबंध में पं०हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है- "भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है-बन गया है तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है। उसमें मानों ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह पक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सकें।"12.कबीर की भाषा में हिन्दी की विभिन्न बोलियों के अरबी, फारसी के शब्द मिलते है, इनकी भाषा को खिचड़ी भाषा संघा भाषा और सधुक्कड़ी भाषा कहा जाता है। उनकी काव्य रचनाओं में सामान्य जनता के हित और उनके उद्बोधन की भावना सन्निहित है। भावों की स्पष्टीकरण के लिए इन कवियों ने प्रतीकों, उपमानों और रूपकों की योजना की है। भावों के प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने के प्रयत्न में अलंकार स्वतः आ गए है। कबीर काव्य में रूपक का उदाहरण द्रष्टव्य है -

"माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि इवै पड़त।

कहै कबीर गुन ग्यान थें एक आध उबरंत।।"13.

यदि देखा जाए तो संपूर्ण हिंदी साहित्य ज्ञान का वह कल्पवृक्ष है, जिसका एक-एक पल नवीन कलाओं और भावनाओं से मंडित रहा है । हिंदी साहित्य अपने में 64 कलाओं और 14 विद्याओं को समाए हुए है। सात द्वीपों वाली यह पृथ्वी माता चार वेद ऋक्, यजु, साम और अथर्व, छह वेदांगों शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष सहित धर्मशास्त्र, आन्वीक्षकी, मीमांसा और स्मृतियाँ मिलकर 14 विद्याओं से मण्डित तथा 64 कलाओं से सुशोभित है। जिससे निसृत परंपरायें पूरे विश्व को ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, कला, कौशल और अनुसंधान से जोड़ रही हैं।

महाकवि कबीरदास स्वयं ज्ञान को महत्त्व देते हैं। उनका मानना है कि, परमात्मा की प्राप्ति ज्ञान और प्रेम के आधार पर ही हो सकती। वह कहते हैं कि,

"पोथी पढ़-पढ़ जुग भया, भया न पंडित कोय।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।"14.

इसी प्रकार एक स्थल पर कबीरदास जी कर्म करने और कथनी करनी में भेद न करने की बात का ज्ञान देते हुए दिखाई देते हैं। उनके ये शब्द समाज को एक नई शिक्षा की ओर ले कर जाते हैं। एक ऐसी शिक्षा जो वास्तव में सच्चे हृदय से प्रारंभ होकर सत्य का ज्ञान कराने में सक्षम होती है-

"कथणीं कथी तो क्या भया, जे करणी नाँ ठहराइ।

कालबूत के कोट ज्यू, देषतहीं ढहि जाइ ॥

जैसी मुख तें नीकसै, तैसी चालै चाल।

पारब्रह्म नेड़ा रहै. पल में करै निहाल॥"15.

भारतीय ज्ञान परंपराओं में निहित संत साहित्य अपने आप में अद्वितीय है। संत किसी के शत्रु नहीं होते वरन् निष्काम होते हैं। ईश्वर लीन होते हैं। प्रेम के उपासक होते हैं। कबीरदास संत महिमा का गुणगान करते हुए कहते हैं-

"निरवैरी निहकामता, साँई सेती नेह,

विषिया सू न्यारा रहै, संतहि का अंग एह।"16.

वास्तव में संतों की विशेषता सत्संगति के रूप में परिलक्षित होती है। संत तो मार्ग से भटके हुए व्यक्तियों को सत्य मार्ग पर लाने की क्षमता रखते हैं। इसलिए कबीरदास आगे कहते हैं-

"संत न छाड़े संतई, कोटिक मिले असंत।

चंदन भुवंगा बैठिया, तउ सीतलता न तर्जत।।"17.

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित संत साहित्य अपने आप में अद्भुत क्षमता को धारण करने वाला है। हिंदी साहित्य की ये परंपरा समाज को सदैव से नयी दिशा, आयाम देने में सक्षम रही है और आज भी दे रही है।

निष्कर्ष:

अंत में कह सकते हैं, कि कबीर का काव्य भारतीय ज्ञान परम्परा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। उनकी कविताओं में भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों और सिद्धांतों को प्रस्तुत किया गया है, जिससे ज्ञान की प्राप्ति आम लोगों के लिए आसान हो गई है। कबीर की कविताओं ने ज्ञान, प्रेम, भक्ति, और एकात्मकता के विचारों को व्यापक रूप से फैलाया है। भारतीय ज्ञान परंपराओं का विश्व पर अमिट प्रभाव है। वैश्विक

धरातल पर चाहे राजनीति हो या सामाजिकता, संस्कृति हो अथवा सभ्यता, ज्ञान हो अथवा कौशल, योग हो सहजता और करुणा से आर्द्र कर देती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में हिंदी साहित्य की हर विधा में समस्त भावनायें समाहित हैं। उसमें भक्ति,ज्ञान और शिक्षा की त्रिवेणी प्रभावित होती ही है साथ ही साथ समाज सुधार की भी प्रवृति है । उसमें बाल मनोरंजन भी है और युवाओं का दिग्दर्शन भी। इस प्रकार हिंदी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का एक मुख्य और अतुलनीय स्रोत है।

सन्दर्भ सूची:-

- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा /लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 61.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 62.
- सं० डॉ० नगेन्द्र/हिन्दी साहित्य का इतिहास / मयूर पेपर बक्स प्रकाशन दिल्ली /पृष्ठ 122.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 617.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 66.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 92.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 102.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 164.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 164.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 104.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 167.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 64.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 63.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 63.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 92
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 167.
- रामचन्द्र तिवारी/कबीर-मीमांसा/ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007/पृष्ठ 133.